

रचनात्मकता, समय और आधुनिकता

महेश सिंह

सारांश

प्रत्येक कलाकार में निर्माण का सहज ज्ञान सबसे अधिक बलवान होता है। कला की सफलता सहज ज्ञान पर ही आश्रित है। वैसे तो प्रायः सभी मनुष्यों में यह शक्ति होती है, पर कलाकार के अन्तःकरण में इसका प्रस्फुटन अत्यावश्यक है। ईश्वर में, जो प्रकृति का सृष्टा माना जाता है, निर्माण का सहज ज्ञान बहुत बलवान है। तभी तो क्षण-क्षण में उसकी सृष्टि अपना रूप बदलती रहती है इसलिए कहा गया है कि सृष्टि अगम है इसलिए ईश्वर एक महान् कलाकार माना गया है अतः जिस कलाकार में जितना ही अधिक रचनात्मक सहज ज्ञान होगा वह उतना ही उच्च कलाकार हो सकेगा। आधुनिक कला में चेतन काल का स्थान प्रमुख है आधुनिक कलाकार कल्पना में पूर्ण विश्वास रखता है। वह अपने सहारे नये रूपों का निर्माण करना चाहता है और वह नये रूप इतने नये हो जो प्रकृति में भी देखने को न मिल सके। इसलिए आधुनिक कला का रूप बहुत ही सूक्ष्म हो गया है।

मुख्य शब्द - अन्तःकरण, सृष्टि

रचनात्मकता के मनोविज्ञान का समय के साथ भी एक खास तरह का रिश्ता है - अपने समय के साथ, अपने से पहले वाले समय के साथ और आने वाले समय के साथ। अतीत, परम्परा, वर्तमान, भविष्य इनकी लगातार उपस्थिति का बोध या इनमें से किसी एक की अति-उपस्थिति का बोध निर्धारित करता है कि एक कलाकार अपने समय में मनुष्य की स्थिति और उसकी आधुनिकता को अपनी रचनाओं में किस तरह ग्रहण और परिभाषित करता है। मनुष्य की स्थिति को मुख्यतः आत्मवादी और वस्तुवादी दोनों ही दृष्टियों से देखा और समझा जा सकता है। दोनों को लेकर द्वन्द्वात्मक भी रहा जा सकता है और समन्वयात्मक भी।¹

मेरी समझ में यह भारतीय जीवन-मूल्यों की आधार-मान्यताओं के पक्ष में जाता है कि हम आज भी भारतीय तथा विदेशी दोनों प्रकार के चिंतनों में, रचनात्मक मिजाज़ को भौतिक

की अपेक्षा आत्मिक संदर्भ में बेहतर समझ पाते हैं। यह रचनात्मकता के अर्थ की खोज है : इसका अर्थ भौतिक का अस्वीकार नहीं।

आज का आधुनिक कलाकार इस भौतिकता पर अधिक ध्यान देने लगा है। नवभारत का स्वतन्त्र कलाकार केवल एक कारीगर की भाँति नहीं, प्रत्युत सर्वप्रथम वह एक दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक की भाँति काम करने का विचार करता था। वह अपने जीवन-दर्शन को निर्धारित करके उसी के अनुसार अपनी एक साधना का लक्ष्य बनाता था। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु वह एक सिद्धान्त निश्चित करके एक अभिनव शैली का आविष्कार करता था, वह केवल परम्परा का सहारा नहीं लेना चाहता था अपितु अपनी बुद्धि, विवेक और अनुसंधान के बल पर कार्य करना चाहता था। परन्तु आज का आधुनिक कलाकार इन सब विचारों को छोड़ कर छोटा रास्ता अपनाने लगा है।^१ तकनीकी ज्ञान का इस्तेमाल जाने अनजाने रूप में करने लगा है, चाहे वह तकनीक उसके कला कार्य के साथ संयोजित हो रही है या नहीं। इसलिए आधुनिक कला में अनेकों प्रकार के नये-नये रूप सामने आ रहे हैं और यही कारण है कि हमें उन्हें समझने में कठिनाई होती है। ज्यों ही हम एक प्रकार की कला की परिभाषा निश्चित करते हैं त्यों ही उसकी दूसरी परिभाषाएं बन जाती हैं, जो सर्वथा भिन्न होती हैं। वर्तमान में यह एक प्रचलन सा हो गया कि कला में प्रत्येक चित्रकार एक नये रूप का अनुसंधान करता है। इस प्रकार के अनेकों रूप विदेशी और वर्तमान भारतीय कला में आविष्कृत होते चले जा रहे हैं। साधारण व्यक्ति को न इतना ज्ञान है, न इतना अवसर है कि इन नये-नये रूपों को समझ सके अथवा उनका आनन्द उठा सके। उसके लिए आधुनिक कला एक पहेली सी बन गयी है।

आधुनिक समय में युवा कलाकार सूक्ष्म रूप को आत्मसात् नहीं कर रहा है बल्कि तकनीकी ज्ञान का सहारा लेकर सहज रास्ता अपना रहा है। सहज रास्ता अपनाना गलत नहीं है परन्तु यह तकनीकी ज्ञान का सहारा लेकर कला की गहनता में ना पहुँच सिर्फ अपना काम निकालने तक सीमित हो गया है, जो कि समय के बदलाव के साथ-साथ रचनात्मकता व आधुनिकता दोनों के लिए घातक सिद्ध होता जा रहा है।^२

कला में यह तकनीकी सूक्ष्मवाद तीव्र वेग से फैल रहा है और कोई आधुनिक कलाकार उसके प्रभाव से बच नहीं सका है, यदि वह आँख खोल कर अर्थात् आत्मसात् होकर कला कार्य कर रहा है तो। धर्म का बोलबाला तो कम हो गया परन्तु उसके बाद आधुनिक समाज में विकृति भी प्रवेश कर गयी, प्रधानतया पूँजीवाद के कारण। समाज का सुख तथा वैभव

धीरे-धीरे उठकर पूँजीवादी हो गया, पथभ्रष्ट हो गया, बुद्धिहीन तथा सौन्दर्य विहीन हो गया। आज का व्यक्ति रोटी के विकट प्रश्न को सुलझाने में जी जान से लगा है, पर प्रश्न दिन पर दिन उझलता ही जाता है। समाज के पास समय नहीं कि वह कला की ओर ध्यान दे, उसके जीवन में कला को कोई स्थान प्राप्त नहीं।⁴

इतिहास से ज्ञात होता है कि प्राचीन कला में काल की भाषा का ऐसा रूप था जिससे पूरा समाज लाभ उठा पाता था। उस समय कला का प्रचार भी अधिक था और समाज की परिस्थिति भी अच्छी थी। आज ना तो किसी के पास कला के लिए समय है और अगर कोई कला के लिए समय निकालता भी है तो उस व्यक्ति की लालसा इतनी बढ़ गई है कि कला सभ्य समाज की भाषा न रहकर कुछ और ही बन गई है।

कला को कुछ लोगों ने अपनी बपौती समझ लिया है और वो लोग या तथाकथित कलाकार अपने मतानुसार कला को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करने लगे हैं और जन साधारण में यह भ्रान्ति फैला रहे हैं कि कला का वास्तविक रूप यही है, यही “सार्वभौमिक कला” है। जबकि यह कला की वास्तविकता नहीं है वह तो केवल भ्रान्ति मात्र है जो कि कुछ तथाकथित कलाकारों द्वारा फैलायी गयी है। इस प्रकार कला समाज की भाषा न रह कर कुछ अलग ही प्रतीत होने लगी है। इस प्रकार वास्तव में जो प्रतीत होती है वह है नहीं और जो है नहीं वो प्रतीत होती है।

कला भी एक भाषा है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने को व्यक्त करता है। आज इस भाषा का कोई निश्चित रूप नहीं है। इस कला रूपी भाषा के नित्य नये रूप सामने आते हैं। यही कारण है कि सारा समाज इससे लाभ नहीं उठा पाता। आधुनिक कला में गिने चुने व्यक्ति ही लाभ उठा पाते हैं या आनन्द ले पाते हैं। जब तक कला की भाषा का एक निश्चित रूप न होगा और समाज में उसका प्रचार प्रसार भली-भाँति न होगा, जब तक समाज में कला का लक्ष्य सिद्ध न होगा। प्रत्येक आधुनिक कलाकार के सामने यह समस्या 21वीं शताब्दी में भी है पहले भी थी और भविष्य में भी रहेगी।

कला का कार्य व्यक्ति और समाज में एकता लाना है। व्यक्ति और समाज को परस्पर समीप लाना है। इसी कार्य के लिए संसार में भाषाओं की उत्पत्ति हुई, जिसमें से कला भी एक है। व्यक्ति संसार में स्वयं के किये हुए अनुभवों से लाभान्वित होता है। उन अनुभवों से वह दूसरों को भी लाभान्वित कराना चाहता है, इसलिए वह कला की भाषा के माध्यम से दूसरों तक अपने अनुभवों को पहुँचाता है। उसके अनुभवों से लोग तभी लाभ उठा सकते

हैं, जब वह एक ऐसी भाषा द्वारा उसे व्यक्त करे जो सभी सरलता से समझते हो। इस सरलता का एक “पैमाना” तैयार होना अति आवश्यक है।

इस प्रकार देखने से यह सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में कला की भाषा सुगम थी। आज यदि हम उसी को आधार मान कर अपनी भाषा को प्रौढ़ बनाने का प्रयत्न करें तो हम अधिक सफल हो सकेंगे। इसलिए बहुतों को परम्परा में विश्वास होता है। समाज की कार्य प्रणाली को ही परम्परा कहते हैं। आज से पहले जो कार्य प्रणाली समाज में थी उसे ही आज हम परम्परा के नाम से समझते या सम्बोधित करते हैं परम्परा का अर्थ यह नहीं है कि आज से सहस्र वर्ष पूर्व जो कार्य प्रणाली थी केवल वही परम्परा है, परन्तु कल तक के बीते हुए घटना चक्र को भी हम परम्परा कह सकते हैं जिसे समझने पर हमें तब और आज के समाज की वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान हो जाता है। समाज की वास्तविक परिस्थिति को समझकर ही हम उन्नति करने को आगे बढ़ सकते हैं।

परम्परा के साथ-साथ नवीन प्रयोगों की भी आवश्यकता है परन्तु नये आयामों का सटीक ढंग के साथ तथ्यात्मक रूप में समझ कर प्रयोग में लाने की आवश्यकता है। सिर्फ नवीनता के नाम पर कुछ भी कर देना “कला की अवनति ही होगी न कि कला की उन्नति। इस “उन्नति” और “अवनति” के बीच एक महीन सा ही अन्तर है जो कि बिना किसी गहन अध्ययन के समझ नहीं आता और इस अन्तर को समझना अति आवश्यक है नहीं तो नवीनता के चक्कर में कला का स्वरूप कुछ अलग ही नजर आयेगा। अतः नवीन प्रयोगों को भलि-भौति समझ कर ही प्रयोग में लाने की आवश्यक है।

कलाकार का यह कर्तव्य है कि वह इस परम्परा से अपने को भली-भौति परिचित कराये ताकि उसे समझ कर वह अपने अनुभवों को सरलतापूर्वक समाज के सम्मुख व्यक्त कर सके।¹ इसका अर्थ यह हुआ कि कला में परम्परा का दर्शन होना आवश्यक है ऐसा होने से समाज में हमारा अति निकट सम्पर्क स्थापित हो सकता है अर्थात् हम अपने अनुभवों को अधिक सरलता पूर्वक समाज के सम्मुख रख सकते हैं।

संसार में सम्पूर्ण सभ्यताओं का आधार मनुष्य की सुख पाने की अभिलाषा है। सुख की खोज में ही मनुष्य इतना आगे बढ़ पाया है। इस खोज के लिए मनुष्य तन-मन-धन तथा अपनी सम्पूर्ण चेतनाओं से निरन्तर रत रहता है। मनुष्य का कोई भी ऐसा कार्य नहीं जिसमें उसके सुख की आकांक्षा न छिपी हो। मनुष्य अभिलाषाओं की एक गठरी है और इन सभी अभिलाषाओं की वह पूर्ति करना चाहता है। एक ओर जैसे-जैसे उसी अभिलाषाएँ पूर्ण होती

जाती है, वैसे-वैसे उसे अधिक सुख मिलता जाता है और दूसरी गठरी की अभिलाषाएँ बढ़ती जाती है। यही है मनुष्य का नित्य प्रति का कार्य, यही है उसका जीवन। मनुष्य की अभिलाषाओं का न तो कभी अन्त होता है और ना कभी उसकी सुख की लालसा खत्म होती है। यह एक प्रकार की मृगतृष्णा की भाँति होता है। इसी प्रकार की मृगतृष्णा का यह संसार है जिसमें हर एक प्राणी अपनी-अपनी प्यास बुझाने के लिए व्याकुल है।^१

कलाकार और कला का सम्बंध प्रेमी और प्रेयसी का है तो प्रेमी अपनी प्रेयसी को क्षण भर के लिए भी आँखों से ओझल नहीं कर सकता और अकस्मात् यदि उसकी प्रेयसी को दुःख होता है चोट पहुँचती है तो वह उसे कदापि सहन नहीं कर सकता। परन्तु कलाकार की प्रेयसी को चोट उसके भाई बन्धु ही लगा रहे हैं। मनुष्य ने अपनी सुन्दरता को अपने आप ही बिगाड़ लिया है। आज का जीवन इतना व्यस्त है कि हमें प्रकृति की सुन्दरता का रसपान करने का समय ही नहीं मिलता और थोड़ा समय किसी प्रकार निकालते भी हैं तो कंकरीट के जंगल ही जंगल नजर आते हैं। आज सुविधाएँ बढ़ी है, विज्ञान ने काफी तरक्की कर ली है परन्तु आज हमारे समाज में आपस का कलह और मनमुटाव, मनभेद, एक दूसरे को क्षति पहुँचाने की भावना, एक को दबाकर स्वयं उपर बढ़ने का प्रयत्न, लालच, झुठाई, अमानुषिक व्यवहार इतने अधिक बढ़ गये हैं कि उनका प्रतिरोध कठिन हो गया है। देश के नेता, सुधारक, पदाधिकारी इत्यादि इस भयानक बाढ़ को अपने भाषणों, लेखों, आदि से दूर करने के लिए कटिबद्ध है, परन्तु इस कार्य में जो सफलता मिल रही है वो भी हमारे सामने है। समाज की यह बर्बरता लेखों और भाषणों से इस तरह दूर नहीं की जा सकती। जब तक समाज एक सुन्दर समाज नहीं बन जाता, जब तक समाज का एक-एक व्यक्ति समाज को सुन्दर बनाने में योग नहीं देता, जब तक समाज के प्रत्येक प्राणी को सौन्दर्य प्राप्ति का मार्ग मालूम नहीं हो जाता, जब तक उसको प्रकृति से प्रेम न हो जब तक उसके विचार नहीं बदलेंगे, वह अपनी हरकतों से बाज नहीं आयेगा। यदि सचमुच हमें कला को बचाना है, अपने समाज को सुन्दर, सुगठित, सुदृढ़ बनाना है तो हमें ध्वंसात्मक वृत्तियों का दमन कर रचनात्मक वृत्तियों का स्वागत करना सीखना होगा और सिखाना होगा।

निर्माण की इस प्रवृत्ति को हमें फिर से जगाना होगा। निर्माण के आधार पर ही हम अपने समाज तथा जीवन को सुन्दर बना सकते हैं। आज 21वीं सदी में आवश्यकता है कि भारत का बच्चा-बच्चा, युवक-युवतियाँ, वृद्ध-वृद्धाएँ, रचना के कार्य में संलग्न हो। विद्यालयों, महाविद्यालयों में, गृह उद्योगों पर रचनात्मक कार्यों पर अधिक ध्यान देना इस समय हमारा

मुख्य प्रयोजन होना चाहिए। रचना का ही दूसरा नाम कला है। यदि ऐसा हम नहीं कर पाते हैं तो भविष्य में कला का अन्त निश्चित है।

इसी प्यास ने प्राणी को योगी से भोगी बना दिया है और मृगतृष्णा से कलाकार भी नहीं बच पाया है और ना ही उसके द्वारा रचित उसकी कला। 21वीं सदी के कलाकार ने इस तृष्णा को मिटाने के लिए निरपेक्ष कला का सहारा लिया जिसके फलस्वरूप कलाकार की तृष्णा मिटी या नहीं परंतु कला का सुन्दर स्वरूप जरूर बिगड़ता गया। इस बिगड़े स्वरूप से भी कलाकार ने आधुनिकता की आड़ में खिलवाड़ करना नहीं छोड़ा फलतः कला अपने बिगड़े स्वरूप से सुधरने की बजाय गहरे अन्धेरे में खोती हुई नजर आने लगी।

कलाकार बेसहारा हो गया। वह यह भी जानता है कि उसकी कला की क्या शक्ति है ? समय के अनुसार कला भी नाना रूप धर कर कुबुद्धि का संहार कर सकती है, यह उसे ईश्वरीय वरदान है। आधुनिक कला में चेतनकला का स्थान प्रमुख है। आधुनिक कलाकार कल्पना में पूर्ण विश्वास रखता है। वह उसके सहारे नये रूपों का निर्माण करना चाहता है और वे नये रूप इतने नये हो जो प्रकृति में भी देखने को न मिल सकें।⁷ इसलिए आधुनिक चित्रकला का रूप बहुत ही सूक्ष्म हो गया है। यूरोप में इस प्रकार की कला का काफी प्रचार हो गया है भारत में भी बहुत से कलाकार आगे आ रहे हैं।

यहाँ हमारे लिए प्रकृति और कला का भेद समझना आवश्यक है। प्रकृति का रचयिता ईश्वर होता है, परन्तु कला मनुष्य की रचना को कहते हैं, जिस प्रकार ईश्वर की प्रकृति का अन्त नहीं है उसी प्रकार मनुष्य की कला का छोर नहीं है। ईश्वर की प्रकृति कल्पना से परे है और यही कल्पना मनुष्य की कला की सीढ़ी है।

आधुनिक कला और प्रधानतया सूक्ष्म-कला समाज के सम्मुख एक ऐसा ही रूप है और कला का ऐसा रूप तब तक रहेगा जब तक समाज होश में नहीं आता। आधुनिक कला में प्राचीन कला की भाँति विषय नहीं होते और यदि होते हैं तो प्राचीन कला से भिन्न। प्राचीन कला का विषय किसी कथा, पुराण या सामाजिक दृश्य या पात्रों के चरित्र से सम्बन्धित होता था जैसे अजन्ता के चित्र बौद्ध धर्म-कथाओं तथा बुद्ध-चरित्र से संबंधित थे, मुगल-चित्रण दरबारी जीवन से, राजपूत कला देवी देवताओं तथा गोपी-कृष्ण के जीवन और समाज से संबंधित थे।

आधुनिक कला में वैसा कोई संबंध नहीं होता है। यह संबंध न होने के कारण ही समाज व कलाकार में दूरियाँ बढ़ रही है। और यह दूरियाँ ही समय के साथ आधुनिक कला की

रचनात्मकता के लिए घातक सिद्ध हो रही है। इन दूरियों को कम करने के लिए युवा कलाकारों की अहम भूमिका होगी।

सन्दर्भ

- प्रयाग शुक्ल, कला समय समाज, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 1979 पृ. सं. 49
- निर्मल वर्मा, कला की प्रासंगिकता, ललित कला अकादमी, रविन्द्र भवन नई दिल्ली, पृ. सं. 8
- विनोद भारद्वाज, आधुनिक भारतीय कला का वातावरण, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, 1979, पृ. सं. 39
- रामचन्द्र शुक्ल, आधुनिक कला का विषय - कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ, द्वितीय संस्करण 1963, विद्यामन्दिर प्रेस (प्रा) लि. वाराणसी - 1, पृ. सं. 23
- सीताकांत महापात्र, परम्परा और कलाकार, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, पृ. सं. 22
- विपिन कुमार अग्रवाल, कला चेतना और समाज, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, पृ. सं. 28
- कृष्ण नारायण कक्कड़, चित्रकला की भाषा, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, पृ. सं. 53